कबीर संत काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

****

हिंदी साहित्य के इतिहास में मध्यकाल के पूर्व भाग को भक्तिकाल की संज्ञा दी गई हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसकी समय सीमा संवत् 1375 - संवत् 1700 तक स्वीकार की है। भक्तिकाल हिंदी साहित्य का "स्वर्णयुग " है। भक्तिकाल की दो प्रमुख काव्यधाराएँ हैं -

1. निर्गुण काव्यधारा
2. सगुण काव्यधारा

निर्गुण के अंतर्गत ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी काव्यधारा को स्थान प्राप्त है। वहीं सगुण के अंतर्गत रामकाव्य और कृष्णकाव्य आते हैं।

निर्गुण संप्रदाय के संतों ने निराकार, अगोचर, अगम, अविगत, वर्णनातीत, शब्दातीत, ईश्वर को प्राप्त करने के लिए ज्ञान एवं प्रेम को आधार बनाया। जिन कवियों ने ज्ञान को प्रश्रय दिया वे ज्ञानाश्रयी काव्यधारा के और जिन कवियों ने प्रेम को आधार बनाया में प्रेमाश्रयी काव्यधारा के कवि माने जाते हैं। लोक कल्याण, लोकमंगल, मानवता के उच्च आदर्शों की अपने काव्य में प्रतिष्ठा करने वाला सत्यम् - शिवम - सुंदरम के सूत्र को अपने में समाहित करने वाला संपूर्ण भक्ति काव्य हिंदी साहित्य का अनमोल एवं अनुपम रत्न है। भक्तिकाल की ज्ञानाश्रयी काव्यधारा को डॉ. रामकुमार वर्मा ने संतकाव्य परंपरा के नाम से अभिहित किया।

संतकाव्य की विशेषताओं पर विचार करने से पूर्व हमारे सामने सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि संत कौन है? स्वयं कबीरदास संत के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहते हैं -

""निरबैरी, निहकामता, साईं सेती नेह ।
विषयां सौं न्यारा रहै, संतनि का अंग ऐह ।।""

दूसरे दोहे में वे कहते हैं -

"वृक्ष कबहुँ न फल चखै ,नदी न संचै नीर ।
परमारथ के कारने, साधु धरा सरीर ।।""

भारतीय आर्यभाषा में "संत" शब्द वैदिक साहित्य में ब्रह्म के लिए प्रयुक्त हुआ है। गीता में कहा गया है "सद्भावे साधु भावे च संदित्येत्प्रयुज्यते "वास्तव में सद्भाव व साधु भाव रखकर ही प्राणीमात्र से प्रेम करना, सर्वभूत हित करना और राग द्वेष आदि द्वंद्वों में ना पड़ना ही संत है। महाभारत में संत का प्रयोग सदाचारी के लिए हुआ है। भागवत में इस शब्द का प्रयोग पवित्रात्मा के लिए हुआ। किंतु लोकवाणी में यह शब्द कुछ परिवर्तित हो गया और इसका अर्थ भी बदल गया ।

डॉ. पितांबरदत्त बड़थ्वाल का मत है किस संत शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से संभव है वह सत का बहुवचन भी हो सकता है जिसका हिंदी में एकवचन का प्रयोग हुआ है। वह शांत का अपभ्रंश रूप हो सकता है जैसा पाली भाषा में हुआ है। पहली व्युत्पत्ति के अनुसार संत का अर्थ होगा वह व्यक्ति विशेष जिसे सत्य की अनुभूति हो गई है दूसरी व्युत्पत्ति के अनुसार जिसकी कामनाएँ शांत हो चुकी हैं। जो निष्काम है। यह दोनों ही भावार्थ निर्गुण संतों पर निरूपित होते हैं। संत शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई? सच्चा संत कौन है? इस संबंध में विद्वानों के मत में भिन्नता है

लेकिन सर्वमत से हम यह कह सकते हैं कि जो आत्मोन्नति सहित परमात्मा के मिलन भाव को सत्य मानकर लोक-मंगल की कामना करता है वही सच्चा संत है ।

संत काव्य में आध्यात्मिक विषयों की सुंदर एवं सहज अभिव्यक्ति हुई है। गंगा की पवित्रता को अपने में समाहित करने वाला यह लोक जीवन का और लोकमंगल का काव्य है इसमें एक और साधना की कठोरता है तो वहीं दूसरी और ईश्वरीय प्रेम और भक्ति की कोमलता मधुरता एवं सुंदरता भी विद्यमान है। वास्तव में संतकाव्य जनभाषा में लिखा गया ऐसा काव्य है जो सामान्य जन में ज्ञान का प्रकाश पर विकीर्ण करता है। काव्य सौष्ठव की दृष्टि से भी यह एक अनुपम काव्य है। नामदेव इसके प्रवर्तक हैं परंतु कबीर को इस काव्य धारा का शिरोमणि कवि होने का गौरव प्राप्त है। धर्मदास, सुंदरदास, गुरु नानक, दादू दयाल आदि इसकी के प्रमुख कवि हैं।

कबीर संत काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

1. निर्गुण ब्रह्म में आस्था

संत कवियों ने निर्गुण ब्रह्म में आस्था प्रकट करते हुए उसे पुष्प की सुगंध के समान अति सूक्ष्म तथा घट-घट का वासी बतलाया है। इनके ईश्वर का न तो कोई रंग है, न रूप है, न जाति है, न कोई आकार है, न वह जन्म लेता है और न ही वह मर सकता है, वह तो अजर-अमर है, अगोचर है, निराकार है, निर्गुण है, शाश्वत है। कबीर निर्गुण राम की उपासना पर बल देते हुए कहते हैं।

"निर्गुण राम, जपहुँ रे भाई ।
अविगत की गति, लखि न जाए ।।"
""दशरथ सुत तिहुं लोक बखाना ।
राम नाम का मरम है आना ।।"

संत हरिदास भी कहते हैं -

"अचल अघट सम सुख को सागर, घट-घट सबरा राम माही रे ।
जन हरिदास अविनासी ऐसा कहीं तिसा हरि नाही रे ।।

2. ज्ञान पर बल

निर्गुण भक्ति के संत कवियों ने ईश्वर प्राप्ति का मुख्य साधन ज्ञान माना है। इनके विचार से संत या महात्मा की धार्मिक उच्चता की परख उसके ज्ञान से ही प्राप्त की जा सकती है। संत कवियों के अनुसार आत्मज्ञान के द्वारा ही मनुष्य को इस संसार की क्षणभंगुरता, नश्वरता का बोध होता है। वह परमतत्व को प्राप्त करने के मार्ग में प्रवृत्त होता हैं। इसलिए कबीर कहते हैं ।

पाछे लागा जाइ था, लोक वेद के साथि ।
आगे थे सतगुरु मिल्या दीपक दीया हाथि।।

सद्गुरु की कृपा से कबीर को ज्ञान रूपी दीपक प्राप्त हुआ और उन्हें यह बोध हुआ -

"पोथी पढ़ -पढ़ जग मुआ पंडित भया न कोय ।
ढाई आखर प्रेम के पढ़े सो पंडित होय ।।""

इतना ही नहीं वह कहते हैं -

""जो वो एकै जांणिया ,तौ जाण्या सब जाण ।
जो वौ एकै न जांणिया ,तौ सब जांण अजाण ।।""

3. गुरु का महत्व

संतकाव्य के सभी कवियों ने गुरु के महत्व को प्रतिपादित करते हुए उसे ईश्वर से भी अधिक महत्व दिया है क्योंकि ईश्वर तक पहुँचाने वाला गुरु ही है, जो अपने शिष्यों को अज्ञानता के अंधकार से निकाल कर, उन्हें ईश भक्ति के पथ पर अग्रसर करता है।

कबीर कहते हैं -

"गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागूं पाय ।
बलिहारी गुरु आपने जिन गोविंद दियो बताय ।।"

नामदेव भी कहते हैं -

"सुफल जनम मोको गुरु कीना ।
दुख बिसार सुख अंतर दीना।।
ज्ञान दान मोको गुरु दीना।
राम नाम बिन जीवन हीना ।।""

तो वहीं पर रज्जबदास कहते हैं -

"जीव रचा जगदीश ने, बांधा काया मांहि।
जन रंजन मुक्ता किया, तौ गुरु सम कोई नाहि ।।""

4. जाति-पाँति का विरोध

संत काव्य के सभी संतों का एक नारा था, सूत्र था जिसके आधार पर उन्होंने जाति-पाति का विरोध किया। वह है

""जाति पाति पूछे न कोई ,हरि को भजे सो हरि का होई।""

मानव धर्म की प्रतिष्ठा कर इन संत कवियों ने ईश्वर भक्ति का अधिकारी सभी को बताया। उनकी दृष्टि में सभी मनुष्य समान हैं। चाहे वह ब्राह्मण हो, वैश्य हो, क्षत्रिय हो या फिर शुद्र। कबीर, रैदास आदि कवि निम्न जाति के थे परंतु इसमें इन्हें कोई आपत्ति ना थी ।

कबीर कहते हैं -

"जाति न पूछो साधु की पूछ लीजिए ज्ञान
मोल करो तलवार का पड़ी रहन दो म्यान ।।"

5. बहुदेववाद का खंडन

संत कवियों ने बहुदेव वाद और अवतारवाद का खंडन करते हुए एकेश्वरवाद पर बल दिया है। हिंदू-मुस्लिम एकता के निमित्त उनकी यह विचारधारा परम उपयोगी सिद्ध हुई। उनका मत है कि ईश्वर एक है, सबका साईं एक है परंतु एक होते हुए भी उसके रूप अनेक हैं ।

कबीर कहते हैं -

""अक्षय पुरुष इक पेड़ है, निरंजन ताकि डार ।
त्रिदेवा शाखा भये, पात भया संसार ।।""

6. रूढ़ियों एवं बाह्याडंबरों का विरोध

संत कवियों ने तत्कालीन समाज में व्याप्त कुरीतियों, रूढ़ियों तथा धार्मिक आडंबरों का कड़ा विरोध किया। उन्होंने हिंदू- मुस्लिम दोनों के धर्म में निहित बाह्य आडंबरों की निंदा की। वृ रोजा, मूर्ति-पूजा, नमाज, तीर्थयात्रा, बलि -प्रथा आदि की कड़ी आलोचना की ।

कबीर जहाँ हिंदुओं की मूर्ति पूजा का विरोध करते हुए कहते हैं -
"पाथर पूजे हरि मिले तो मैं पूजूँ पहार ।"

तो वहीं वे मुसलमानों को कहते हैं

"कांकर पाथर जोरि के मस्जिद लई बनाय
ता चढ़ी मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय।।"

"दिनभर रोजा रखत है राति हनत है गाय ।
यह तो खून वह बंदगी कैसे कैसी खुसी खुदाय ।।"

ईश्वर मंदिर-मस्जिद में नहीं बल्कि जग के कण-कण में व्याप्त है। वह घट-घट के वासी हैं परंतु नादान और अज्ञानी मनुष्य इस बात को नहीं समझता। मानव की इस स्थिति का चित्रण निम्न दोहे में हुआ है ।

"कस्तूरी कुंडलि बसे, मृग ढूंढै बन माहि ।
ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखे नाहि ।।""

7. नारी विषयक के दृष्टिकोण

संत कवियों ने नारी के प्रति दो प्रकार की धारणा या दृष्टिकोण प्रकट किया है। पहला उन्होंने नारी को माया का प्रतीक माना है जिसमें उसे महा ठगनी और पापिनी कहते हुए उसे त्याज्य माना है क्योंकि माया के कारण है आत्मा-परमात्मा से दूर हो जाती है और माया ऐसी मोहिनी है, कनक-कामिनी है, जो सब को अपने बस में कर लेती है। ब्रह्मा-विष्णु-महेश, धनी-निर्धन, भक्त, राजा-रंक सभी माया के बस में होते हैं और अपने लक्ष्य से भटक जाते हैं। कबीर कहते हैं -

"माया महाठगनी हम जानी,
त्रिगुण फांस लिए कर डौले, बोले मधुर बानी ।।
केशव के कमला बैठी, शिव के भवन भवानी ।।""

वहीं दूसरी और नारी के पतिव्रता, ममतामयी, आदरणीय सत सती रूप की, माँ के रूप में अराधना भी की गई है ।

हरि को जननी की संज्ञा देते हुए कबीर कहते हैं -

"हरि जननी मैं बालक तेरा,
काहे न औगुन बकसहु मेरा ।
सुत अपराध करें दिन केते,
जननी के चित रहे न तेते।। "

पतिव्रता की महिमा प्रतिपादित करते हुए कबीर कहते हैं -

"पतिव्रता मैली भली कालि कुचित कुरूप ।
पतिव्रता के रूप सौ वारि कोटि सरूप ।।"

8. भजन तथा नाम-स्मरण की महिमा

संत कवियों ने ईश्वर प्राप्ति के लिए, आवागमन के चक्र से मुक्ति पाने के लिए ईश भजन तथा नाम-स्मरण को आवश्यक माना है। भजन तथा नाम स्मरण को प्रदर्शन का विषय ना बनाकर संत कवियों ने प्रत्येक मनुष्य को तन-मन-वचन-कर्म से तथा पावन हृदय से हरि नाम स्मरण करने की प्रभु का भजन करने की प्रेरणा दी है क्योंकि मनुष्य का जन्म बार-बार नहीं मिलता और यदि उसने अपने इस मानव जन्म को ईश्वर की भक्ति में नहीं लगाया तो उसका जीवन व्यर्थ है ।

कबीर कहते हैं -

"कबीर सुमिरन सार है और सकल जंजाल ।"

कबीर निर्भय होकर राम नाम जपने की प्रेरणा देते हैं क्योंकि मृत्यु का कोई भरोसा नहीं है ।

"कबीर निरभय राम जपि, जब दीव लागै बाति ।
तेल घटै बाति बुझै, तब सोवेगा दिन राति ।"

नाम स्मरण में इतनी शक्ति है कि राम नाम जपते-जपते हम स्वयं राममय हो जाते हैं। इसलिए कबीर कहते हैं-

"तूं तूं करता तूं भया, मुझ में रही ना हूँ ।
वारी तेरे नावं पर जाऊं जित देखूं तित तूं ।।"

डॉ. त्रिलोकीनाथ दीक्षित कहते हैं - "निर्गुण भक्ति का मूल तत्व है, निर्गुण- सगुण से परे अनादि-अनंत-अज्ञात-ब्रह्म का नाम जप । संतों ने नाम जप को साधना का आधार माना है। नाम समस्त संशयों और बंधनों को विच्छिन्न कर देता है। नाम ही भक्ति और मुक्ति का दाता है ।"

9. विरहा भावना का महत्व

यद्यपि संत कवियों ने ईश्वर को निर्गुण निराकार माना है परंतु जहाँ तक प्रेमभाव का संबंध है उन्होंने ईश्वर को अपने प्रिय के रूप में और जीवात्मा को उसकी आराध्या पत्नी के रूप में प्रस्तुत किया है। कबीर कहते हैं -

"बिनु बालम तरसै मोर जिया ।
दिन नहिं चैन राति नहीं निंदिया, तरस-तरस की भोर किया ।।"

विरह की अग्नि में तपकर ही प्रेम रूपी स्वर्ण शुद्ध होता है, पवित्र होता है इसलिए कबीर कहते हैं कि विरह को बुरा नहीं कहना चाहिए

"बिरहा बिरहा मत कहौ बिरहा है सुल्तान ।
जिहिं घट बिरह संचरै सो घट सदा मसान ।।""

10. रहस्यवाद

ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों ने रहस्यवाद को सुंदर एवं सरल भाषा में व्यक्त किया है। आत्मा-परमात्मा का कथन करके जब आत्मा का परमात्मा के प्रति अनुराग व्यक्त किया जाता है तो वह रहस्यवाद कहलाता है। इन संत कवियों का रहस्यवाद एक और शंकराचार्य के अद्वैतवाद से तो दूसरी और योग साधना से प्रभावित है। कबीर कहते हैं -

"लाली तेरे लाल की जित देखूं तित लाल ।
लाली देखन मैं गई तो मैं भी हो गई लाल ।।"

तो वहीं अन्य स्थल पर वे कहते हैं आत्मा परमात्मा में कोई भेद नहीं है

"जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी ।
फूटा कुंभ जल, जल ही समाना, यह तत्व कथ्यौ ग्यानी ।"

11. लोकमंगल की भावना

संतों की भक्ति साधना व्यक्तिगत होते हुए भी सामाजिक उत्थान एवं कल्याण की भावना से ओतप्रोत है। संतों ने अपने शुद्ध, सरल एवं सात्विक जीवन को लोगों के सामने आदर्श रूप में प्रस्तुत करके समाज सुधार की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है। डॉ. जयनारायण वर्मा कहते हैं कि "इस धारा के प्रतिनिधि कवि कबीर को अपने युग का गांधी कहना सर्वथा समीचीन है उन्होंने हिंदू -मुस्लिम के मनोंमालिन्य रूपी पंक को प्रेम रुपी जल से प्रक्षालित किया। पारस्परिक वैमनस्य को दूर कर ऐक्य की स्थापना की ।

समाज में फैली विसंगतियों पर, आडंबरों पर, धार्मिक कर्मकांड़ों पर इन संतों ने तीखे व्यंग्य कसे और मानवता के धर्म को प्रतिष्ठित करने के लिए प्रत्येक मनुष्य को सदाचार, सद्भाव रखने और सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया, ताकि एक स्वस्थ समाज की स्थापना हो सके। इसके लिए कबीर कहते हैं कि हमें दूसरों में बुराई खोजने के बजाय स्वयं की बुराइयों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए ।

"बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय ।
जो मन खोज्या आपना मुझ-सा बुरा न कोय।।"

यूं ही धर्म के आडंबर पर प्रहार करते हुए कबीर कहते हैं -

"माला फेरत जुग भया मिटा ना मनका फेर ।
करका मनका डारि कै मनका मनका फेर ।।"

12. लोक भाषा का काव्य

भाषा भावों और विचारों की अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण माध्यम है। संतों ने लोक भाषा को अपने काव्य का विषय बनाया है। डॉ. ब्रजभूषण शर्मा कहते हैं -

"संतों ने भाषा के विषय में किसी नियम की अपेक्षा, स्वानुभूति को प्रमुखता दी और उसने विशिष्टता, व्यापकता और भविष्यगामी प्रभावों को बनाए रखा।"

संतों की भाषा में खड़ीबोली, राजस्थानी, ब्रज, अवधी, पंजाबी भोजपुरी के शब्दों का मेल पाया जाता है। भाषा में संगीतात्मकता, आंलकारिकता, चित्रात्मकता, भावात्मकता, मधुरता, प्रभावात्मकता का सौंदर्य विद्यमान है। आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी संतकबीर को भाषा का अधिनायक, वाणी का डिक्टेटर मानते हुए कहते हैं कि "कबीर के सामने भाषा के करबद्ध दासी रूप में खड़ी हो गई थी।"

भाषा जिन संतो की दासी हो उनकी काव्य -भाषा की उत्कृष्टता स्वीकार न करना हमारी मूर्खता ही होगी।

वास्तव में संत काव्य सामान्य जनता और उनकी ही भाषा में रचा गया, एक अनुपम काव्य है। विद्वानों ने इनकी भाषा को पंचमेल खिचड़ी और सधूक्कड़ी भाषा कहकर भी पुकारा है।

13. मुक्तक शैली, छंद योजना और अंलकार

संत कवियों ने मुक्तक शैली को आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। मुक्तक में भी इन कवियों ने मुख्य रूप से गेय मुक्तक को ही अपनाया है जिसमें गीतिकाव्य के अधिकांश तत्व मिलते हैं। वास्तव में इनके रहस्यात्मक, नीतिपरक, आत्मानुभव को अभिव्यक्त करने में मुक्त काव्य शैली ही अधिक उपयुक्त थी।

संत काव्य में छंद-योजना और अलंकारों का अत्यंत स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। संतों ने दोहा, चौपाई, उल्लाला हरिपद, गीता सार, छप्पय आदि छंदो का विशेष प्रयोग हुआ। इन कवियों ने अपने सबद, बानियाँ, साखियाँ रमैणी में दोहा छंद का सर्वाधिक प्रयोग किया है। कबीर के दोहे बहुत प्रसिद्ध हैं। जैसे -

"साधु ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय ।
सार-सार को गहि रहै थोथा देई उड़ाय ।।"

जहाँ तक अलंकारों की बात है, अलंकार भी अनायास ही इनकी भाषा के सौंदर्यवर्धक बन गए हैं। विशेषकर अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, रूपक, दृष्टांत, पुनरुक्ति प्रकाश यमक, श्लेष स्वभावोक्ति, विरोधाभास अलंकार इत्यादि। उपमा और दृष्टांत का उदाहरण देखिए -

"माया दीपक नर पतंग भ्रमि-भ्रमि मांहि पड़त ।
कहै कबीर गुरु ग्यान तै एक आध उबरत ।।"

रूपक अंलकार माया रूपी दीपक और नर रूपी पतंग। ठीक है और भ्रमि भ्रमि में पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार है। दृष्टांत दीपक और पतंगे की स्थिति के जरिए मानव और माया के प्रभाव समझाने का प्रयास किया गया है। नर माया के आकर्षण में फंस जाता है वैसे ही जैसे पतंगा दीपक की ओर आकर्षित होकर अपने प्राण गंवा देता है लेकिन गुरु के ज्ञान से नर इस मुसीबत से बच सकता है ।

14. उलटबासियाँ

संत कवियों ने प्रतीकों अत्यंत कलात्मक प्रयोग किया है उलट बासियों के रूप में। उलटबासियाँ को अर्थ विपर्यय भी कहा गया है। इसमें कभी आध्यात्मिक भावों को ऐसे ढंग से कहता हैं जो सुनने में तो उल्टे लगते हैं परंतु उसमें अर्थ बहुत गंभीर होते हैं। जैसे एक स्थान पर कबीर कहते हैं -

"एक अचंभा देखा रे भाई !
ठाढ़ा सिंह चरावै गाई।।"

यहाँ पर सिंह मन का प्रतीक है और गाय इंद्रियों का। किसी ने ऐसा आश्चर्यजनक दृश्य देखा है जहाँ शेर गायें चला रहा हो। लेकिन मानव जीवन में ऐसे उदाहरण देखने को मिल जाएंगे क्योंकि मनुष्य का सिंह रूपी मन गाय रूपी इंद्रियों के पीछे पीछे चलता हुआ दिखाई पड़ता है।

निष्कर्षस्वरूप हम कह सकते हैं कि संतों की वाणी, उनकी वाणी का एक एक शब्द में निस्संदेह व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, नैतिकता, साहित्य, संस्कृति, मानवता और विश्व कल्याण के लिए अत्यंत उपयोगी एवं प्रासंगिक है। साधारण जनता को उनकी भाषा के माध्यम से ज्ञान-कर्म-भक्ति तथा प्रेम का अमर संदेश देकर मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करने का सराहनीय कार्य संत काव्य ने किया। उनके इस उल्लेखनीय योगदान के लिए हिंदी जगत ही नहीं अपितु संपूर्ण मानव समाज इन संतों का और उनकी वाणी का सदा सर्वदा ऋणी रहेगा।

कबीर संत काव्य धारा के शिरोमणि कवि हैं। "परंपरा पर संदेह, यथार्थ-बोध, व्यंग्य, काल-बोध की तीव्रता और गहरी मानवीय करुणा के कारण कबीर आधुनिक भाव बोध के बहुत निकट लगते हैं और आज भी उनका काव्य प्रासंगिक है।"

डॉ .अनु शर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिंदी विभाग
लक्ष्मीबाई महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।

बीकॉम हिंदी बी 1/2 सेमेस्टर के विद्यार्थियों के लिए विशेष। इस सामग्री के माध्यम से आप तीन प्रश्नों के उत्तर देने में समर्थ होंगे। प्रश्न के अनुसार केवल प्रस्तुति का ढंग बदल जाएगा ।